PART 19

|| भव तारण बोध ||

धर्मदास बोले कर जोरि। सदगुरु विनती सुनिये मोरी ॥
कौन विधि भवसागर छूटे। यम बंधन ये कैसे टूटे ॥
भव दरिया का आर ना पारा। जिसमे अटके सब संसार ॥
इससे पार मे कैसे जाऊं। परम पुरुष को कैसे पाऊं ॥
करु भक्ति या योग कमाऊं। करु दान या तीर्थ नहाऊं ॥
यज्ञ करु या इन्द्री साधूं। बाहर फिरुं या मत को बांधूं ॥
जो तुम कहोगे नाथ करूंगा। वचन तुम्हारे हृदय धरूंगा ॥
भवसागर दुख मैटो हमारा। जनम-मरण ना होय दुबारा ॥
संशयरहित करो मुझे स्वामी। तुम सब घटके अन्तरयामी ॥

|| सदगुरु वचन ||

सुनो धर्म मैं सत्य बताऊं। भवसागर का भरम मिटाऊं ॥
संशय रहित सदा तुम होगे। राह तुम्हारी कोई ना रोके ॥
करो भक्ति और बंधन काटो। जनम मरण का संशय पाटो ॥
सच्ची भक्ति करो चित्त लाई। साधु सेवा करो तजके बड़ाई ॥
सुन धर्मदास भक्ति पद ऊंचा। इन सीढ़ियो पे नही कोई पहुंचा
योगी योग साधना करता। भवसागर से नही पर तरता ॥
दानी भी नही फल कोई पावे। भवसागर फल भुगतने आवे ॥
तीर्थ नहाए भी जो कुछ होता। सुन तुझसे मैं सब वो कहता ॥
जन्म ले, वो उज्जवल तन पावे। सम्पत्ति कारण जग आवे ॥
ऊंचे घर मे ले अवतार। ब्रह्मण-क्षत्री के घरबार ॥
इन्द्री साधन है यह नीका। बिना भक्ति जानो सब फीका ॥
इन्द्री साधन है तप भारी। तामस तेज क्रोध हंकारी ॥
क्रोध करके कोई मुक्ति ना पावे। भक्ति महात्म हाथ ना आवे ॥
व्रत कर एक भक्ति का पूरा। और है साधन सभी अधूरा
सब साधन हैं यम की फांसी। भक्ति व्रत से मिले अविनाशी
हर अवराधन की सुन बात। सुन लो जो भी भेद है ज्ञात ॥

हरि हर, नाम सदाशिव ध्याए। शिव चरणों का ध्यान लगाए॥
बहुत प्रेम से शिव को ध्याए। रिद्धि सिद्धि दूनम अति पाए॥
मन में अपने उन्हें बसाए। गिरि कैलाश पे वास वो पाए॥
लेकिन काल ने पकड़ी बाँह। डाल दिए भवसागर माँह॥
इससे संशय छूटे नाँही। भव सागर में जीव जो जांही॥
शिव साधन से गति यह होती। निर्भय पद की ना प्राप्ति होती॥
शिव की साधना करके भाई। चौरासी से ना मुक्ति पाई॥
हरि हर की यह कथा सुनाई। आगे और सुनाऊँ भाई॥

॥ दोहा ॥

शिव साधन की यह गति, शिव है भव के रूप।
बिन समझे ये जगत सब, परे महा भ्रम कूप॥
नरक वास में मनु परे, ऐसे शिव महाकाल॥
कहे कबीर विचारके, मिटे ना यम का जाल॥

॥ चौपाई ॥

हरिहर नाम विष्णु जी का भाई। हर कोई जिनकी करे सेवकाई
विष्णु को ही कर्ता बतलावे। पूजके प्राणी जिन्हें फल पावें॥
सब घट मांही विष्णु विराजे। खान-पान में विष्णु ही गाजे॥
सब विष्णु को भोग लगाते। हरि भजन कर नाम को ध्याते॥
हरि हर नाम, विष्णु कहाए। शुभ और अशुभ फल जिसमे समाए
इनकी साधना करता जो भाई। जीवन भर वो रहे भरमाई॥
बहुत प्रीत से जो विष्णु ध्यावे। जीव वो विष्णु धाम को पावे॥
विष्णु पुरी में भी निर्भय ना होता। जन्म धरा पर फिर-फिर होता
हरि-हरि नाम विष्णु का ध्याया। हरि साधन का फल बतलाया॥

॥ दोहा ॥

हरि नाम है विष्णु का, जप करता संसार।
निर्भय नहीं हो जीव पर, आता रहे भव द्वार॥

॥ चौपाई ॥

धर्मदास सुनो तुम हो साधू। फसना ना छल में तुम्हे बताऊँ ॥
हरि हर ब्रह्मा का ये नाम। रज गुण का है व्यापक धाम ॥
जगत कहे ब्रह्मा है कर्त्ता। लेकिन मर्म समझ नही पड़ता ॥
ब्राह्मण को पूजे संसारा। फिर भी होय ना भव से न्यारा ॥
पढ़ पढ़ विद्या जग भरमावे। भक्ति पदारथ मगर ना पावे ॥
पोथी पाठ पढ़े दिन राती। जो केवल भ्रम के उत्पाती ॥
प्राणी भ्रम से निर्भय ना होता। भ्रम के दरिया में वो बहता ॥
औरन को शिक्षा सब देते। ज्ञान ना अपने हृदय लेते ॥
पाप पुण्य का लेखा करते। बिना भक्ति चौरासी पड़ते ॥
ब्रह्मण की अद्भुत करतूती। ब्रह्मण पूजे होय ना मुक्ति ॥

॥ दोहा ॥

त्रिगुण भक्ति है जग की, निर्गुण भजे न कोय।
सगुण - निगुण त्याग के, भक्ति रहित घर होय ॥
इन त्रिगुणों की भक्ति में जिन्हे भूलो धर्मदास।
सर्वोत्तम निर्गुण ही है, जहाँ योगी करे वास ॥

— चौ० —

धर्मदास सुन सन्त सुजान। निर्गुण का अब करु बखान।
निर्गुण नाम निरंजन का भाई। जिसने सारी सृष्टि रचाई ॥
निर्गुण से उत्पन्न ओंकारा। जिससे तीनो गुण विस्तारा ॥
निर्गुण से ही मन हुआ प्रचण्ड। जिसका वास सकल ब्रह्माण्ड ॥
ओंकार मन आप निरंजन। नाना विधि के भोग व्यंजन ॥
भाँति भाँति के घाट संवारा। कहा तक कहे वार ना पारा ॥
उसके अंश के ही सब अवतार। राम कृष्ण जिनमें सरदार ॥

पूर्ण आप निरंजन होय। उससे बड़ा नही कोई होय।
सगुण करै निर्गुण की सेवा। भक्ति करै और पूजै देवा॥
वह आचार विचार ना जानै। मन की बात नही कै मानै॥
मन का बोध मन मे समावै। मन का भेद कोई नही पावै॥
मन का बोध है जो भी समझता। मन जहां चाहे वहां पहुंचता॥
जाप निरंजन तक पहुंचाते। अन्य ना कोई राह दिखाते॥
प्राणी तीनु लोक सब अटके। ब्रह्म के दर्शन से सब भटके॥
ऋषि मुनि गण गंधर्व व देवा। सब मिल करें निरंजन सेवा॥
साधक सिद्ध साधु जो हुए। इनसे आगे कोई नही गये॥
बहुत प्रीति से भक्ति निचारी। मिले प्रेम बन भक्ताधिकारी।
जाय निरंजन से किए भेटा। काल रूप धर करै समेटा॥
यही निरंजन का विस्तारा। जिसमें उलझे सब संसार॥
इधर उधर राखै भरमाई। रचना अनन्त अपार बनाई॥
धर्मदास तुम भक्ति सनेही। इन में मत अटकाओ देही॥
जनम जनम छूटै नही भाई। रहे आपको हम समझाई॥
भक्ति गुप्त जाने नही कोई। तुर्त सनेही पावै सोई॥

॥ दोहा ॥

इनसे भक्ति गुप्त है, सुन धर्मदास सुजान।
भक्ति करो भरमो नहीं, येही भक्ति प्रमाण॥

॥ धर्मदास वचन ॥

हे स्वामी मैं हूं अज्ञानी। गुप्त भक्ति मोहे बताओ स्वामी॥
सतगुरु भक्ति मुझे समझाओ। कृपा दास पे नाथ दिखाओ॥
तुम्हरी भक्ति कौन विधि पाऊं। कौन भांति भव पार मैं जाऊं॥
भक्ति का कहो हमसे प्रकार। करके अपने मनमे विचार॥
भक्ति भक्ति जगत बखाने। पर भक्ति की विधि ना जाने॥
निश्चय कर भक्ति समझाओ। भव तारण कोई विधि बताओ
जिससे सब संशय मिट जाई। ऐसी भक्ति दो हमें पढाई॥

दोहा/साखी

भव है दुख का सार यह, गुरु सेवा है सुखकर।
जो गुरु की सेवा करे.. वो जाए भव तर ॥

— ॥ कबीर वचन ॥ —

कहें कबीर सुनो मेरी वाणी। भक्ति सार मैं कहूँ बखानी ॥
भक्त हुए जग मे बड़े भाई। करी भक्ति पर युक्ति ना पाई ॥
आदि भक्ति शिव योगी किए। रखे गुप्त किसी से भी नही कहे ॥
योग किए वो भक्ति कमाए। हृदय एक ही ध्यान बसाए ॥
वो अक्षर है ॐकारा। जिससे उपजा सकल संसारा ॥
वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड माँही। शिव जानें कोई जाने नाँही ॥
लेकिन मेरी भक्ति न्यारी। उसको नही जाने संसारी ॥
उसको योगेश्वर नही पावें। और जीव क्या उसको पावे ॥
शिव से बड़ा ना किसी को जाने। सच्चा सार नही पहचाने ॥
वह प्राणी कभी भवमुक्ति ना पाए। ब्रह्म को कभी समझ ना पाए ॥
नही स्थान हमारा वो पावे। वहां तक बेचारा नही आवे ॥
धर्मदास कहूँ वर्णन अपना। ब्रह्मा पुत्र सेवे जो चरणा ॥
सनक सनन्दन सनत्कुमार। सनकादिक से चारो अवतार ॥
पांच वर्ष काया बिन रहे वो। ब्रह्म मे लीन अपार रहे वो।
ब्रह्मसमान गये वो होय। ब्रह्म मे पूर्ण गये जब खोय ॥
ध्यान निरंजन का जो लगाए। ब्रह्म स्वरूप के ध्वनि पाए ॥
निरंजन अंश हंस अवतार। सकल सृष्टि का वही आधार
युक्ति यह कोई विरला जाने। कहा हमारा प्राणी ना माने ॥
इनकी भक्ति करे नर सोई। हमरी भक्ति ना जानत कोई ॥
भक्त अनेक हुए जग माँही। निर्भय घर को पावत नाँही ॥

भक्ति करें तब भक्त कहावे। भग से रहित पर हो नहीं पावे॥
भग भुगते फिर-फिर भग आवें। भग से ही बचपन सब पावें॥
चौदह लोक बसे भग माँही। भग से न्यारा कोई नाँही॥
न्यारी युक्ति मैंने तुम्हें दिखाई। तहाँ सुर्त रहै साधु कहाई॥
भुगते भग और भक्त कहावे। फिर-फिर योनि संकट आवे॥
जो मेरी भक्ति युक्ति जाना। उसको जग में पड़ नहीं आना॥
भक्ति करें तब मुक्ति को पावे। नहीं बाना झूठा कहावे॥
भक्ति भेद बहुत बड़ा भाई। निर्मल भक्ति ना किसी ने पाई॥
तुम पूछे जो भक्ति प्रकार। उसके बारे में सुनो विचार
भक्ति होती नहीं नाचते-गाते। भक्ति होती नहीं घंटा बजाते
भक्ति होय नहीं मूर्त पूजे। भक्ति होय नहीं पत्थर सेवे॥
मीठा-मीठा गावें व रोवें। वो हर क्षण विरथा जन्म खोवें॥
ऐसा साहिब मानते नाँय। वो सब काल रूप के छाँय॥
मन ही गावे मन ही रोवे। मन ही जागे मन ही सोवे॥
जब तक लगन ना भीतर लागे। तब तक सुर्त नहीं कभी जागे॥
सत्य नाम की खबर ना पाई। फिर क्या भक्ति करो रे भाई
ठौर ठिकाना जानते नाँही। झूठे ही मग्न रहें मन माँही
कहने सुनने को भक्त कहावें। भक्ति भेद बिल्कुल नहीं पावें
प्रेम लगन बिन भक्ति ना होई। संगति को पावेना हर कोई॥
अपने साहिब को नहीं जाना। बिन देख नहीं, जाए वो जाना॥
ऐसी भूल में पड़ा संसार। कैसे उतरे भव जल पार॥
सत्य भक्ति को नहीं अपनाए। अभागा प्राणी समझ नहीं पाए॥
धर्मदास तुम हो बुद्धिवन्त। भक्ति करो पाओ सत सन्त॥
एक पुरुष है अगम अपार। सब घट व्यापक सबसे न्यारा॥
उसको नहीं जाने संसार। जिसकी भक्ति महा निजसार॥
भक्ति करें जब उतरे पारे। सुर्त नृत्य कर सेवे सार॥
यह विधि भक्ति पदारथ पावे। मुक्ति होय भव फिर नहीं आवे॥
भव सागर से उतरे पार। फिर के ना ले जग में अवतार॥

ऐसी भक्ति, मुक्ति की दाता। जिसकी गति नहीं लखै विधाता॥
भक्ति ही भक्ति भेद बहु भारी। यही भक्ति है जगत से न्यारी॥

॥ दोहा ॥

भक्ति पदारथ अगम फल, लेय जो जीव उबार।
पावै पूरण पुरुष को, आये ना फिर संसार॥

॥ धर्मदास वचन ॥

बोले धर्म हे सन्त महान। पूर्ण पुरुष बसे किस स्थान॥
किस विधि से सेवा कर पाऊं। कैसे चरण कमल में पाऊं॥
कौन विधि साधू में भक्ति। सद्गुरु बताओ कोई युक्ति॥

॥ सद्गुरु वचन ॥

पहले हृदय में प्रेम बसावै। साधू देख सेवा को आवै॥
चरण धोय चरणामृत लेवै। प्रीति सहित साधू को सेवै॥
लगन से साधू की करो सेवकाई। इससे भवबंधन कट जाई॥
जो साधू प्रेम की गति जाने। उसी साधू की सेवा ठाने॥
परमपुरुष की भक्ति सिखावै। भवमुक्ति का मार्ग बतावै॥
उससे प्रीति करो चितलाई। छोड़के दुर्मति और चतुराई॥
तबही प्राणी परम पद पाए। भव में वापिस फिर नहीं आए॥
भव से तरने में संशय ना कोई। लगन हृदय में सोची जो होई
किसी बात फिकर ना करना। बात समझके भव से तरना

॥ धर्मदास वचन ॥

धर्मदास पूछे चित लाय। सकल वेद दो मुझे बताय ॥
निर्गुण रहित तुम्हारा नाम। कैसे भक्ति करो उस स्थान ॥
हे स्वामी अचरज की बात। भक्ति का कोई दाव ना घात ॥
सगुण भक्ति यह केर संसार। निर्गुण योगेश्वर आधार ॥
इन दोनों पार बताओ। भक्ति सार हमें समझाओ ॥
सत्य बात कहो मुझसे गुसाई। किस विधि ध्यान लगाऊँ सांई ॥
सगुण का पार ना पाए कोई। मेरे मन बड़ा संशय होई ॥
सतगुरु संशय दो ये निवार। मैं जाऊँ तुमपे बलिहार ॥
सगुण व निर्गुण भेद बताऊँ। तीसरा न्यारा भी समझाऊँ ॥
हो समर्थ तुम सतगुरु सांई। दृढ़ता से पकड़ो मेरी बाँह ॥
युक्ति सभी बतलाओ मुझको। सच्ची राह दिखाओ मुझको ॥
तुम सत् सत्य तुम्हारी बात। मैं याचक तुम दीनानाथ ॥
जो मैं मांगू दो मुझे दाता। जिससे सब संशय मिट जाता ॥

॥ साखी ॥

सत्य, सत्य समरथ धनी, सत्य का करो प्रकाश।
सत्य लोक पहुँचाइये, छूटे जो यम भव त्रास ॥

॥ सद्गुरु वचन ॥

सुनो धर्म सब कहूँ संदेश। आओ ना फिर जो धरा के देश ॥
भव तारण का पंथ है न्यारा। जिसको नहीं जाने संसारा ॥
योगेश्वर भी वो गति ना पाए। साधक सिद्ध की बही चल पाए ॥
भक्ति होय जगत में भारी। ध्रुव प्रह्लाद सदा अधिकारी ॥
भक्त नहीं इनके सम कोई। रामकृष्ण का दर्शन होई ॥
दोनों जने ही दो व्रत साधे। दोनों एक हठ अवराधे ॥

सतयुग में ध्रुव भक्ति कीन्हे। पांच वर्ष के ही तप ये कीन्हे॥
घर से निकले जंगल आए। नारद से उपदेश वो पाए॥
छठे मास में हरि वहां आए। देके राज्य बैकुंठ पठाए॥
साठ हजार वर्ष दिया राज। बैकुण्ठ विराजे कुटुम्ब समाज॥
एक दिवस जब प्रलय वहां आई। वहां उन्होंने देह गंवाई॥
मोक्ष समीप नहीं जा पाए। परम पुरुष को जान न पाए॥
काल से कोई नहीं बच पाए। काल सभी को है ये नचाए॥
ऐसे भक्त भी इस जग मांही। परम पुरुष गति पावत नांही॥
सगुण भगत बस ये ही पावे। जग में आवे जग से जावे॥
परम पुरुष को जो पहचाने। शब्द साधना को जो जाने॥
ज्योति स्वरूप के दर्शन पाए। होके हंस परम गति पाए॥
परमलोक स्थान वो पाए। नहीं जगत में फिर वो आए॥

॥ साखी ॥

ध्रुव की गति तुमसे कही, सुन धर्मदास सुजान।
अपरम्पार नहीं पाते, पूरण पद ही निर्वाण॥

सुन धर्मदास कथा इक न्यारी। बड़ी भक्ति प्रहलाद विचारी॥
हिरणाकुश दानव बली भारी। जन्मे घर प्रहलाद तपधारी॥
तप के हेतु गये बन मांही। किसी बात का संशय नांही॥
हिरणाकुश जब तप किए भारी। गर्भवती हुई उनकी नारी॥
आकाश वाणी ही तब सुनाई। इन्द्रासन छीनेगा ये भाई॥
हिरणाकुश का पुत्र जो होगा। इन्द्रासन को वे छीनेगा॥
इन्द्र को संशय हुआ तब भारी। मन में उसने युक्ति विचारी॥
छल अपना तब इन्द्र दिखाए। नारी को अपने देश ले आए॥
उसी क्षण नारद आए वहां पर। इन्द्र को समझाया यह कहकर
इनका गर्भ ना चीरो भाई। भक्त होता सबको सुखदाई॥
गर्भ के बीच ही ज्ञान उसे दीन्हे। नारद एक काम बड़ा कीन्हे॥

दिये ज्ञान उन्हे गर्भ के मांही। रहे वो वर्ष हजार वहां ही ॥
फिर नारी अपनी पुर आई। इन्द्र को जीत हिरनाकुश पाई ॥
वहां जन्म तब लिए प्रहलाद। राम रटन मे जिनको स्वाद ॥
ऐसी रटन लगाए भारी। दूजा ना कोई जग में पुजारी ॥
कितने ही कष्ट चाहे आएं। ध्यान हरि से नही हटाएं ॥
हिरनाकुश के मन मे आई। राम तेरो मोहे दे दिखाई ॥
खम्भ फाड़ लीन्हो अवतार। हरि आए रूप नरसिंह धार ॥
नख से पेट असुर का फाड़ा। अपना भक्त प्रहलाद उबारा ॥
फिर से इन्द्रासन पहुचाया। सगुण भक्ति जाने सब माया ॥
दृढता से रहे हरि सुमरके। इन्द्रासन से प्रीती करके ॥
कैसे भक्त रहे वो भाई। उनकी गति तुमको समझाई ॥
इन्द्रासन का राज सुनाऊ। महा भोग बड़े सुख पाऊ ॥
सत्तर दोय चौकड़ी भुगता। भव बंधन से फिर भी ना मुक्ता ॥
बड़े भक्त की कथा सुनाई। और क्या तुमसे कहूं मैं भाई ॥

॥ साखी ॥

इन्द्र राज सुख भोगकर, फिर भव सागर आँए।
यह सगुण की भक्ति है, कभी भी निर्भय नाँय ॥

धर्मदास पूछे चित लाय। सतगुरु संशय दीजो मिटाय ॥
सगुण भक्त कभी मुक्त ना होई। है वह एक ही या हैं दो, ही ॥
यह संदह मिटाओ मेरा। तुम सतगुरु हम बन्दी हेरा ॥
सगुण क्या निर्गुण कह सकते। बताओ स्वामी हम ना समझते ॥
जो मुझपर है दया तुम्हारी। कहिए गुरुवर युक्ति विचारी ॥
यह संसार कहा से आया। कौन है ब्रह्मा कौन है माया ॥
अन्तर स्वामी हमे बताओ। हमसे कुछभी नही छुपाओ ॥
भक्ति भेद कहो मुझसे स्वामी। तुम सब घटके अन्तर्यामी ॥
जीव काहे आए जग माही। अब मुझको कुछ संशय नाही ॥
सतगुरु मैं आधीन तुम्हारे। तुम भवसागर तारन हारे ॥

॥ साखी ॥

निःसंदेह पद कथा है, वह सब मुझे समझाओ।
फिर भ्रम पर आऊं नहीं, युक्ति दो मुझे बताओ ॥
कहे सुने से सुख मिले, जग में आवे नांय।
काल रहे सिर झुकाय के.. युक्ति दो समझाय ॥

॥ सद्गुरु वचन ॥

कहे कबीर सुनो धर्मदास। अब निज भेद पे डालूं प्रकाश।
ध्यान लगाय सुनो मेरी वाणी। कहे जिव्हा पे ज्ञान वरदानी ॥
सूक्ष्म गति अति भारी झीनी। विरले से जाए पहचानी ॥
आदि व अन्त में नहीं थी माया। उत्पत्ति प्रलय में नहीं थी काया ॥
शून्य शिखर में ना तत्व का मूल। कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूल ॥
आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा। नहीं निरंजन नहीं अवतारा ॥
दश अवतार न चौबिस रूप। तब नहीं होता ज्योति स्वरूप ॥
पुण्य पाप कुछ भी नहीं होता। सोऽहं ब्रह्म नहीं सोऽहं जापा ॥
नहिं तब शून्य सुमेर न भार। कूर्म न शेष धरे अवतार ॥
अक्षर एक न ररंकारा। त्रिगुण रूप भी नहीं विस्तारा ॥
शक्ति युक्ति नहीं आदि भवानी। नहीं कोई ज्ञानी अज्ञानी ॥
शब्द न स्वांति कछु नहीं होई। कहूं विचार सुनो तुम सोई ॥
नहीं है बीच नहीं अंकूर ही। आदि अन्त नहीं चन्द्र सूर ही ॥
हे धर्मदास समझ के रहना। कहूं मैं क्या, नहीं कुछ कहना ॥

॥ धर्मदास वचन ॥

धर्मदास कहे सुनो गुसाईं। ~~ऐसे बातें बनाओ कहीं नांई~~ ॥
ऐसे मुझे बहकाओ नांहि ॥
किये संशय है इक ठौर। तुम ही थे वो या कोई और ॥
सत्य सत्य स्वामी सब कहिए। दास पे अपने किरपा करिए ॥
तीन वचन ले पूछूं साईं। साधु संत तुम आप गुसाईं ॥

॥ सद्गुरु वचन ॥

कहै कबीर सुनो धर्मदास। सकल भेद मैं किया प्रकाश ॥
जो प्रीति हो मन में तेरी। भव को छोड़ शरण रहो मेरी ॥
धर्मदास छोड़ो सब माया। अस्थिर अमर अखंडित काया ॥
भक्ति मुक्ति उपजी है जासे। प्रेम से लगन लगाओ वासे ॥
मेरे कहे अब तू जो जागे। टूटें जनम मरण के धागे ॥
जनम मरण है अति दुखभारी। जिससे तुमको लूं मैं उबारी ॥
अब अपने को थापो नांहि। देख लो कुछ तुम बाहर मांहि ॥

॥ साखी ॥

अब तेरे भेद बताऊँ मैं, निर्मल ठौर वो न्यार।
सब परे सब ऊपर ही, देखो वहां अकार ॥

पुरुष कहो तो पुरुष भी नांही। पुरुष हुआ आया भू माही ॥
शब्द कहो तो शब्द भी नांही। शब्द होय माया के छांही ॥
दो बिन हो नहीं अधर अवाज। कहो है क्या यह काल अकाल ॥
अमृत सागर वार ना पार। नहीं जानो कितना विस्तार ॥
जिसमे अधर भवन इक जागा। अक्षम नाम अक्षर इक लागा ॥
नाम कहो तो नाम ना जिसका। नाम धरा काल है उसका ॥
है अनाम अक्षर के मांही। यह अक्षर कोई जाने नाहीं ॥
धर्मदास वहां वास हमारा। काल अकाल ना पाए पारा ॥
उसकी भक्ति करे जो कोई। भव से छूटे जन्म न होई ॥

॥ साखी ॥

भव सागर भरमो नहीं, यही प्रताप हमारा।
निश्चय करके मानिए, उतरो भव से पारा ॥

॥ धर्मदास वचन ॥

हे स्वामी यह अकही कहानी। किसी ने सुनी ना, गई बखानी॥
योगेश्वर नहीं पावें पारा। मैं क्या जानूं जीव विचारा॥
अचरज गुप्त ये तुम्ही सुनाए। जिसकी गुप्तता कही ना जाए॥
उसकी भक्ति को किस भांति। रूप, अरूप ना पूजा पाती॥
कौन युक्ति से भक्ति कीजे। कैसे ठिकाना वहां पे कीजे॥
जैसे जानो मुझे भी ले चलिए। तन मन छोड़ देह सुध करिए॥
अब कुछ मुझसे होता नाहीं। ध्यान समाय गया तुम मांही॥
यहां वहां तुम समरथ स्वामी। जान गया मैं अन्तर्यामी॥

॥ साखी (दोहा)।

नाम कबीरा धरा क्यों, कारण कौन प्रमाण।
देह धरी क्यों आपके, कहिए मुझसे बखान॥

सत्य कबीर नाम मैं जाना। क्यों पड़ा तुमको धरा पे आना॥
ऐसे सन्त ने जन्म क्यों धारा। किस कारण लीन्हा अवतारा॥
आप कहो बन्धन में नाहीं। निरबन्धन कैसे हो जग माही॥
धरके देह सभी दुख पाया। तुमको क्यों नहीं व्यापी माया
दृढ़ता से पूछूं गुरु बात। क्रोध ना करना मुझपे नाथ॥

॥ साखी ॥

मैं पूछत हित आपने, जीव मुक्ति के काज।
साधु सन्त तुम सुजन को, पूछने में क्या लाज॥

।। सदगुरु वचन ।।

धर्मदास तुम साँची कहते। झूठ के बंधन में नहीं रहते ।।
तुम हो अंश हंस के राजा। तुमको भरमावे ना कोई काजा ।।
आदि अनादि समीप तुम मेरे। अब मैं काज करूंगा तेरे ।।
तुममे क्षमता बहुत समाई। लेकिन लगी यहां आ काई ।।
काल पुरुष ने दिया भरमाई। जिसने सृष्टि बनाके रखाई ।।
जग जीवन से तू है न्यारा। तुझको काज लिया अवतारा ।।
और काज मेरा कोई नाहीं। हूं मैं निरन्तर जग के मांही ।।
मुझको ना व्यापे ये जग की माया। कहने सुनने को ही है ये काया ।।
देह नहीं और दीखे देही। रहो सदा जहां पुरुष विदेही ।।
यह गति मेरी कोई ना जाना। धर्मदास तुम भी ये छुपाना ।।
गुप्त रहूं ना, नाही दिख पाऊं। यूं ही जग में आऊं-जाऊं ।।
युग-युग लिया हूं मैं अवतार। रहा प्रकट धरा पे कई बार ।।
सतयुग सत सुकृत बन आया। त्रेता में नाम मुनीद्र था पाया ।।
द्वापर में करुणामय कहाए। कलियुग नाम कबीर रखाए ।।
चारो युग के चारो नाम। माया रहित रहे स्थान ।।
जिस स्थान ना पहुंचे कोई। सुर नर-नाग रहे ना कोई ।।
सबसे कहूं पुकार पुकार। कोई ना माने नर और नार ।।
उनका दोष नहीं कुछ भाई। धर्मराज राखें अटकाई ।।
गुप्त पसारा है यह भारी। जान ना पाएं नर और नारि ।।
शिव गोरख भी पार ना पावें। और जीव क्या भेद को पावें ।।
यह नाम बिन चौरासी सिद्धा। समझे बिना जग में ज्यों अन्धा ।।
शेष मुनि धरे असंखन भेष। सके ना सत्य ठौर पर देख ।।
जोर किसी पे चलता नाहीं। बहुत कहे समझा मन माहीं ।।
कोई योगी कोई सदके माता। कोई कहे हम देखे विधाता ।।
कोई भजन करे कोई मनावे। कोई मौन धर मूल गवावे ।।
सत्य पुरुष की युक्ति ना पाई। हृदय धरे नहीं सत्य को भाई ।।

कोई कहे हम भजते स्वामी। आत्मा देखे ना अंतर्यामी ॥
कोई कहे हम पढ़े पुरान। तत्व अतत्व गये सब जान ॥
कोई कहे विद्या आधीना। सब विचार काया में चीन्हा ॥
कोई कहे तप वश करि राखा। तप है मूल और सब शाखा ॥
कोई कहता कर्म अधिकार है। कर्म से उतरे ज्ञानी भव पार है ॥
कोई कहे भाग्य में लिखा जो होता। भाग्य लिखा मेटे नही मिटता
कहां तक कहूं यही सब कहते। भेद हमारा मिले ना लेते ॥
सब से हार मान मैं बैठा। जीव के पीछे काल है रहता ॥

॥ साखी / दोहा ॥

वही काल करतार वही। भक्ति मुक्ति उसीके हाथ।
मेरा कहा तू मान ले, है प्रपंच बड़े साथ ॥
मन ही प्रपंची मन ही निरंजन, मन ही है ओंकारा।
फन्दा है त्रिलोक का, कोई ना भव से न्यारा ॥
निरंजन ही निर्वान पद, कही तुम्ही हितवन्त।
योग यति सन्यासी भी कोई ना पावत अन्त ॥
सप्त सुर्त में रम रही, सुर्त शब्द ले हाथ ॥
ऐसी अगम अपार गति - तीन लोक के नाथ ॥

सात शून्य का सकल पसारा। सात शून्य से कोई ना न्यारा
सात सुर्त का भेद बताऊं। उसका ज्ञान सकल समझाऊं ॥
उत्पत्ति प्रलय है उसके साथ। इस गति का नही न्यारा नाथ ॥
प्रथम है अमी सुर्त निज ठौरा। जहां निरंजन कीन्हा दौरा ॥
वहां जाय अमृत ले आवे। उसका अक्षर बीज उपजावे ॥
फिर उस बीज को रक्त मे धरना। इस विधि से उत्पत्ति करना ॥
बीज ही जल का रंग कहाया। जिससे रची सभी की काया ॥
दूजी मूल सुर्त उसी संग। घट घट माहि बनावे रंग ॥
तीजी चमक सुर्त अंबारा। नौ नारी में किया पसारा ॥

कोठा वहां बहत्तर करते। रोम-रोम युक्ति सब धरते ॥
चौथी शून्य सूर्त है भाई। धर्मदास जो तुम्हें दिखाई ॥
पंचम सूर्त श्रवण संग होई। शुभ और अशुभ सुनावे दोई ॥
छठवें सूर्त ठिकाना बतावे। चौखट पाख के स्वाद बतावें ॥
यह तो रहे कंठ के द्वारा। वाणी भाषा कहें विचारा ॥
सप्तम सूर्त रहे भवन मांही। हृदय से कहीं न्यारा नांही ॥
ब्रह्म रूप धर जहां यह बैठे। गुप्त पसार सकल घट पैठे ॥
कोई ना जाने इसका मर्म। ज्ञानी ध्यानी रहें सब भर्म ॥
सात सूर्त का कहा विचार। इसका धर्म वार ना पार ॥
सात कमल का भेद बताऊँ। कमल कमल की युक्ति दिखाई ॥
मूल कमल है मूल ही द्वारा। चार पंखुड़ियां हैं विस्तारा ॥
वहां विनायक देव विराजे। मूल द्वार कमल सूर्त साजे ॥
उसके ऊपर पुष्प है दूजा। षट दल में ब्रह्मा की है पूजा ॥
तीजे कमल पंखुरी है आठ। नाभी मांही है जिसकी गांठ ॥
वहां वासुदेव का स्थान। लक्ष्मी सहित बसें भगवान ॥
चौथा कमल हृदय में होता। वास महेश का जहां पे होता ॥
षोडश कमल आत्म पहिचाना। शक्ति अविद्या कहा बखाना ॥
षष्ट कमल पंखुड़ी है तीन। सरस्वति का वहां वासा कीन्ह ॥
सप्तम कमल त्रिकुटि के तीर। दो दल मांहि बसे दो वीर ॥
शशी और सूर्य प्रकाशक जग के। यह सब खेल निरंजन नट के ॥
अष्टम कमल ब्रह्माण्ड के मांही। जहां निरंजन और कोई नांहि ॥
आठ कमल का बना ठिकानी। धर्मदास बड़भागी जानो ॥

॥ साखी ॥

सप्तकर्म और शून्य सात, सात सुर्त स्थान।
इक्कीसों ब्रह्माण्ड में, आप निरंजन राज ॥
राज निरंजन देखता, जगह जगह भरपूर।
धरती से पाताल तक, कहीं पास कहीं दूर ॥

सुन धर्मनि सब जुगत बताई। तुमसे नहीं कोई बात छुपाई ॥
आदि अन्त सब तुम्हे दिखाया। उत्पति प्रलय की गति समझाया।
उत्पति प्रलय का सिरजनहारा। मेरा भेद निरंजन पारा ॥
मैंने कहा यह तुम्हने ज्ञान। अदभुत है जो, और महान ॥
जो कोई माने कहा हमारा। वह हंस हो जाए हमारा ॥
अमर करें फिर मरण ना होई। उसका खूंट ना पकड़े कोई ॥
फिरके नहीं जन्मे जग माहीं। काल अकाल का उसे दुख नाहीं ॥
सुख सागर सुख मूल बतावा। बड़भागी हंसा कोई पावा ॥
अंकुरी जीव जो होय हमारा। भवसागर से होय नियारा ॥
प्रण से प्रतीत करो मन लाय। जिससे यह भव ही छुट जाय ॥
सुर्तवंत जो सांचा होई। शरण तुम्हारी पाए को ही ॥

॥ साखी ॥

प्रथम तो दृढ़ प्रतीत है, होय भक्ति अंकुर।
भाव प्रीती सेवा करे, देय ज्ञान भरपूर ॥

॥ धर्मदासवचन ॥

स्वामी मैं तुमको पहचाना। आदि अन्त भेद सब जाना ॥
तुमही वार तुम्ही हो पूर। तुम्ही से उपजा सब संसार ॥
तुम ही सकल जगत आधारे। तुम ही सकल जगत से न्यारे ॥
गुप्त प्रकट में सब विधि जाना। तुम ही हो वहां पद निरवाना ॥
आपसे छुपा नहीं कुछ स्वामी। आप ही हो इक अन्तर्यामी ॥
पूरण कृपा किये तुम साईं। मेरे मन कुछ संशय नाँही ॥
अब तारण तुम संशय निवारण। धर और अधर दोनो के धारण ॥
समर्थ सब गति समझा मैं तोरी। अब सब संशय भागी मोरी ॥
हुओ सनाथ मैं दर्शन पाय। माया छूटी परम पद पाय ॥
छूटा काल निरंजन मोरा। जन्म मरण का छूटा डोरा ॥
अब जग में मैं फिरके ना आऊं। तुम्हरे चरण कमल चित लाऊं ॥
ऐसी युक्ति किसी ने ना पाई। जो साहिब मुझको बतलाई ॥

जान गया मैं तुम्हारी बात। तुम सम और ना कोई तात ॥
चौरासी से मुझे उबारा। होगा जन्म ना फिर दोबारा ॥
समझ बूझ करु अब सेवकाई। छोड़के कुल की लाज बड़ाई ॥
मतलब के प्राणी जग मांही। जग मे कोई किसी का नाँही ॥
अपने अपने स्वार्थ मे फिरते। परमारथ नही किसी का करते ॥
ये सब जगत निरंजन मांही। पांच तीन से सब उपजाई ॥
पांच तत्व तीन गुण भारी। इनसे युक्त दिखाई नारी ॥
पानी पवन पृथ्वी आकाश। सब पर तेज किया प्रकाश ॥
रज तम सत तीनों गुण जाना। ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना ॥

॥ साखी ॥

पांच तीन पर करे निरंजन यह माया की ठाट।
उसी से सब रचना करी रचे भिन्न ये घाट ॥

॥ सद्गुरु वचन ॥

कहें कबीर सुनो धर्मदास। सकल भेद मैं किया प्रकाश ॥
तुम से मैंने कुछ ना छुपाया। जो कुछ भी था सभी बताया ॥
अब तुम भक्ति करो दृढ़ताई। छोड़ देव कुल लाज बड़ाई ॥
पहले कुल मर्यादा छोड़ो। फिर भक्ति से नाता जोड़ो ॥
कुल की भय सबको ही भारी। चाहे नर हो चाहे नारी ॥
जिसने यम बन्धन मे बांधे। काज अकाज ना कोई साधे ॥
मन से मैल अपने निकालो। सेवा करो सत्य मन धारो ॥
भव बंधन से वो ही छूटता। जो सत चिन्तन पुरुष का करता ॥
सेवा करो छोड़ मन दूजा। गृही सेवा गृही पूजा ॥
गुरु से कपट व करे चतुराई। वह हंसा जग मे फिर आई ॥
जिसको गुरु से परदा नाँही। परदा करें रहे भव माँही ॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा। गुरु सम और नहीं कोई देवा ॥
गुरु है सम और नही दूजा। जाने हंस अंश गुरु पूजा ॥
गुरु से परदा कभी ना करिए। सर्वस्व गुरु के आगे धरिए ॥

॥ साखी ॥
गुरु की महिमा है अपर, शिव ब्रह्मा दोहराऐं।
गुरु को जो है मानते, परम धाम को जाऐं॥

धर्मदास सुन जुगत बताऊँ। चौक आरती तुझे समझाऊँ॥
अगर चन्दन का चौका दीजे। ज्योत जलाय आरती कीजे॥
पांच तत्व पांचों है बाती। बाहर भीतर ज्योति समाती॥
मानिक दीपक का उजियारा। यही बात सब करे विस्तारा॥
श्वेतपात ले हो सुख भारी। श्वेत खटाई श्वेत सुपारी॥
इसी विधि चौका विस्तारो। मेवा अष्ट लाय वहां धारो॥
मेवा केला कपूर मंगाओ। कदली फल भी वहां ले आओ॥
पहुप फूल सुगन्ध संवारो। भिन्न भिन्न व्यंजन पधारो॥
तन मन धन सब अर्पण कीजे। प्रेम सहित मन में सुख लीजे
पांच तत्व को भोजन कीजे। ब्रह्म की आत्मा तृप्त तू कीजे॥
काया माया का सुख येही। यह सुख पाके मिलो विदेही
मिलो विदेह, देह धर नाही। पूछ लेना तुम यह मन मांही॥
अब कुछ कहने को ना रहा है। सब कुछ मैंने तुमसे कहा है॥
भव छूटन को यही उजागर। इसी विधि उतरें भवसागर॥
सत्य सत्य यह बात हमारी। जो भी कोई समझे नर नारी॥
भक्ति कर मुक्ति फल पावे। हमारे सत्य लोक वह आवे॥
कहै कबीर सुनो धर्मदास। छूटे कर्म भर्म सब फांस॥
॥ साखी ॥

① कर्म भर्म भवबन्ध सब दिये भार में झोंक।
सतगुरु के परताप से मिट गये सबही धोंक॥
② यह भवतारण ग्रन्थ है, सतगुरु का उपदेश।
जो इसे समझे प्रेम से, पहुंचे हमरे देश॥

गुप्त भेद सुने धर्मदास। हृदय उनके हुआ प्रकाश ॥
मूल वस्तु ही बीज है भाई। उपजै नष्ट हो, आवे जाई ॥
निह अक्षर से अक्षर भाया। अक्षर ही सब को उपजाया ॥
सोहम कला अभी के मांही। श्वेत बीज झलके है वहां ही ॥
श्वेत बीज का मूल है माया। उसके बीच सभी की काया ॥
श्वेत बीज का ही सकल पसारा। उसी से जीव लिया अवतारा ॥
अंकुर एक उसी से निकला। उसी से अंश समस्त है फैला ॥

— ॥ साखी ॥ —

उत्पत्ति प्रलय सब बीज गति, बीज ही आवे जाय।
गुप्त प्रकट जो कुछ भी था, सब कुछ दिया दिखाय ॥
मनसे ही माया उपजे, माया है त्रिगुण का रूप ॥
पांच तत्व का मेल ही बांधे सकल स्वरूप ॥
माया ब्रह्म जो तत्व और रजस तम त्रिय देवा।
इन सब को ही छोड़कर करो अक्षर सेवा ॥
जो चाहो वो ही मिले, मानो मेरा विचार।
यह भेद जाने बिना, कोई ना उतरे पार ॥
भव के सब बंधन कटें, संशय कतई ना होय।
हंसन में जो रम रहा, शरण तके नहीं कोय ॥
कहे कबीर धर्मदास से, छोड़ो तुम संसार।
बात हृदय में धार कर, तारो कुल परिवार ॥
अंश वंश परिवार निज, नाद बिन्दु गुरु शिष्य।
जो चाहे शब्दाक्षर, मुक्ति पाए अवश्य ॥

॥ इति अवतारण बोध समाप्त ॥

Jitendra Raghuvansi